डॉ. विजय मिश्र

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित भौतिक विज्ञानी एवं संस्कृत विद्वान। कवि के तौर पर न्यू इंग्लैंड, दक्षिण एशिया के अनेक देशों में चर्चित एवं सफल यात्राएँ कीं। अनेक गरिमापूर्ण कवि सम्मेलनों में भागीदारी। विगत १८ बरसों से हार्वर्ड विश्वविद्यालय में सालाना भारतीय कविता पाठ का आयोजन कर रहे हैं।

सम्पर्क : १८०, बेडफोर्ड रोड, लिंकन, एमए. ईमेल : misra.bijoy@gmail.com

विमर्श

वाल्मीकि रामायण : आधुनिक विमर्श-१५

दण्डकारण्य

हिंदी अनुवाद : संजीव त्रिपाठी

रामायण की कहानी मुख्यतः तीन भोगोलिक भूभागों में बुनी गई है, उनमें से प्रथम है 'अयोध्या' और उसका समीपवर्ती क्षेत्र, दूसरा दक्षिण भारत का विस्तृत वनक्षेत्र 'दण्डकारण्य' और तीसरा समुद्र में स्थित 'लंका' द्वीप। अन्य संबन्धित क्षेत्र, कैकेय और मिथिला का कहानी में उल्लेख वैवाहिक सम्बन्ध बनाने के सन्दर्भ में हुआ है। अयोध्या नगर 'इक्ष्वाकु' कुल के साम्राज्य की राजधानी थी जो राजा दशरथ को उत्तराधिकार में मिली थी। पर कोशल राज्य, उत्तर भारत के अधिकांश क्षेत्र तक फैला हुआ था। दण्डकारण्य क्षेत्र, जो विंध्य पर्वत श्रृंखला के दक्षिण में था, सैद्धान्तिक रूप से इक्ष्वाकु राज्य के अंतर्गत आता था, पर उसका अधिकांश क्षेत्र जंगली और अविकसित था। इसका उत्तरी भाग एकांतवासी ऋषियों-मुनियों की पसंदीदा जगह थी जो ध्यान और साधना के लिए अत्यंत उत्तम स्थान था।

दूर-दूर तक फैली पर्वत श्रृंखलाओं, अनेक नदियों और तालाबों से संपन्न यह क्षेत्र उष्णकटिबंधी सदाबहार वनों और फलों से भरपूर था जो स्वछंद जानवरों के विचरण के लिए उपयुक्त था। सभी तरह के वन्य प्राणी और जीव-जंतु इस वन क्षेत्र में बड़ी संख्या में रहते थे। तरह-तरह के हिरण, भालू, शेर, चीता और सांप आसानी से विचरण करते दिख जाते थे। यहाँ के जंगलों में जानवरों के साथ आदिम लोग भी रहते थे जिनका रहन-सहन अति आदिम था। यहाँ तरह-तरह के पक्षी और जल-जंतु भी पाए जाते थे। इन सब के मध्य यहाँ एक स्वर्ग जैसा पौराणिक क्षेत्र था जहाँ साधक मनुष्य रहते थे और वे जीवन की दृढ़ता और सहनशीलता पर तरह-तरह के प्रयोग करते थे। शायद उन्होंने अपने अंतर्ज्ञान को एकरूपता और समदर्शिता के कारण बृहद् बना लिया था। वनवास से मनुष्य के मन और शरीर पर होने वाले सुप्रभावों का मानव सभ्यता के दृष्टिकोण से वैज्ञानिक शोध होना अभी बाकी है।

वहाँ उग्र प्रजाति 'राक्षस' कुल के लोग भी रहते थे जो उद्भव के नज़रिए से हिंसक प्रवृत्ति और जीवन के प्रति विचित्र दृष्टिकोण रखने वाले थे। हम कई तरह से इनको मानव समाज का हिस्सा मान सकते हैं, लेकिन व्यवहार से वह अति अहंकारी और अज्ञानी थे। उनके समुदाय का अपना साम्राज्य, सेना और राजा थे। वाल्मीकि के विवरणानुसार वह मानव को चीर कर उसका रक्तपान करते थे। जानवरों का रक्तपान करना कई सभ्यताओं और समाजों में कोई नई बात नहीं है लेकिन प्रोटीन के लिए मानव वध करना एक विचित्र पहलू है। अति उग्र स्वभाव के कारण राक्षस नरभक्षी भी थे और वह मानव मांसाहार करते थे। नरभक्षी जीव का जिक्र मानव शास्त्र में भी आता है और वह अवैज्ञानिक नहीं है।

जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, उससे पता चलता है कि राक्षस कुल की भूमध्यवर्ती क्षेत्र में बहुत बड़ी आबादी थी। कुछ राक्षसों ने तप और कठिन अभ्यास से विशिष्ट शारीरिक शक्तियाँ और बुद्धि कौशल हासिल कर लिया था। वाल्मीकि रामायण कथा में 'रावण' पात्र का जिक्र करते हैं, जिसके दस शीश और बीस भुजायें थी। युद्ध और चालाकी से उसने विश्व की अधिकांश संपत्ति हासिल कर ली थी। वह अपने साम्राज्य का विस्तार और अपनी महत्वाकांक्षाएं पूरी करने के लिए मानव प्रजाति पर भी विजय प्राप्त करना चाहता था। वाल्मीकि ने उसकी छवि एक ऐसे कामुक व्यक्ति की बनाई है जो किसी भी सुन्दर स्त्री को देख मोहित हो जाता था। वाल्मीकि के लेखानुसार रावण बहुत ही दुष्ट, पतित, अहंकारी और अपनी इच्छाओं के प्रति अति आसक्त था। रामायण कथा का उद्देश्य राम के सद्गुण और नैतिकता एवं 'रावण' की धूर्तता और अनैतिकता का उल्लेख करना है।

निर्जन वन क्षेत्र होने के कारण रावण ने दण्डकारण्य का उपयोग उत्तर में रहने वाली प्रजातियों पर आक्रमण करने के लिये किया था। रावण के सेनापति और योद्धा दण्डकारण्य में छोटे-छोटे हिस्सों में जाकर, वहाँ ऋषियों-मुनियों और सन्यासियों के आश्रमों को विध्वंस करते थे। साधु सन्यासी युद्ध कला में दक्ष नहीं थे और राक्षसों के उत्पात के भय के कारण वह आश्रम छोड़कर चले जाते थे। राक्षसों

के बढ़ाते हुये आतंक को देख अंत में, अगस्त्य नाम के ऋषि जो युद्ध कौशल में निपुण थे, उन्होंने राक्षसों से निपटने की तकनीकी आविष्कृत की, जिससे ऋषियों-मुनियों के लिये कुछ सुरक्षित क्षेत्र बनाया जा सके। राम ने ऋषि अगस्त्य के बारे में सुन रखा था और उन्होंने अपनी दण्डकारण्य यात्रा के दौरान उनसे मिलाने का प्रयास किया। अगस्त्य द्वारा राम को दिये गये अस्त्र-शस्त्र ही रावण और उसकी सेना पर राम की विजय का साधन बने।

दण्डकारण्य का वन राजाओं द्वारा निर्वासित व्यक्तियों को सजा देने के लिए भी उपयोग किया जाता था। गैर जघन्य अपराधों के लिए निर्वासन की सजा देना एक पुरानी प्रथा है। यह स्पष्ट नहीं है की कैकेयी के दिमाग में राम को और किसी जगह भेजने का विचार था या वह राम को अधिक से अधिक दूर भेज देना चाहती थी जिससे वह भरत के लिए किसी तरह की परेशानी खड़ी न कर सके। उसका ऐसा भी मानना हो सकता है कि राम वनवास के कटु अनुभवों को सहन ही न कर सके और स्वतः ही हमेशा के लिए भरत का रास्ता साफ़ हो जाए। ऐसा पहले भी वनवास की सजाओं के दौरान दूसरों के साथ घटित हो चुका है। राम के दण्डकारण्य में वनवास की बात सुनकर कौसल्या अति व्यथित हुईं, उसके मन में अनेकानेक प्रकार की चिताएं आने लगी।

अयोध्या छोड़ने के बाद राम, लक्ष्मण और सीता ने कई माह तक यमुना नदी के दक्षिण ओर प्रयाग के पश्चिम में स्थित चित्रकूट नामक पर्वत पर निवास किया। उस क्षेत्र में ऋषियों-मुनियों के कई आश्रम थे। उनमें से एक आश्रम ऋषि वाल्मीकि का था जिन्होंने ने राम को कुटिया बनाने के लिए जगह ढूढ़ने में मदद की थी। भरत परिवार के अन्य सदस्यों के साथ राम से भेंट करने के लिए चित्रकूट स्थान पर ही आये थे। जब भरत के बहुत आग्रह के बाद भी राम ने अयोध्या वापस जाने के निवेदन को नहीं माना, तो भरत राम की चरण पादुका अपने साथ ले गये और उन्हें ही सिंहासन पर राजा के स्थान पर स्थापित किया। भरत के वापस जाने के कुछ समय पश्चात राम को ऋषियों ने सचेत किया कि ऋषि-मुनि यहाँ से राक्षसों के अतिक्रमण के भय के कारण यह स्थान छोड़कर जा रहे हैं। एक वृद्ध ऋषि ने बतलाया कि जब से राम ने इस क्षेत्र में अपना निवास बनाया है तब से रावण का एक सेनापति 'खर' बहुत उत्पात मचा रहा है। राम ने खर से युद्ध करने के बजाय अन्य ऋषियों की तरह वहाँ से विस्थापित होने का निर्णय लिया।

राम, लक्षमण और सीता ने चित्रकूट से दक्षिण पूर्व दिशा की ओर आगे जाकर दण्डकारण्य में प्रवेश किया। 'अत्रि' मुनि के आश्रम को पार करने के बाद उनका सामना एक नरभक्षी 'विराध' से हुआ जो उस क्षेत्र में बने आश्रमों का स्वयं को रक्षक मानता था। उसने उनको चेतावनी दी कि यह क्षेत्र योगियों का है इसलिए स्त्रियों का प्रवेश यहाँ वर्जित है। नरभक्षी विराध सीता को अपने कंधे पर लेकर जंगल में अन्दर भाग गया। वह शरीर से इतना मजबूत था कि उस के शरीर पर राम और लक्ष्मण के बाणों का कोई प्रभाव ही नहीं हो रहा था। अंत में राम और लक्ष्मण ने उसकी भुजा तोड़कर उसको नियंत्रित किया। राम की अंतर्शक्ति को पहचान कर उसने बताया कि वह गन्धर्व है और श्रापवश पृथ्वी लोक में पैदा हुआ है। उसने राम से आग्रह किया कि वह उसको इस तरह से दफनायें कि जिससे उसकी सद्गति हो जाए। इस तरह का दफनाना सांस्कृतिक विरासत हो सकती है। विराध की कहानी विलक्षण है पर वह दण्डकारण्य का एक नमूना है।

राम अनुज लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ यात्रा के दौरान 'सरभङ्ग' और 'सुतीक्ष्ण' के आश्रमों से भी गुजरे। वह आगे 'पञ्चाप्सरा' झील क्षेत्र से गुजरे। ऐसा माना जाता है कि यह झील ऋषि 'माण्डकर्णी' ने बनाई थी। जमीन के नीचे एक अदृश्य जलधारा की मधुर आवाज से ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई यहाँ संगीत की मधुर ध्वनि सुना रहा हो। एक किंवदंती के अनुसार यहाँ पानी के नीचे महल में स्वर्ग की अप्सरायें ये मधुर संगीत की ध्वनि बजाती थी। दण्डकारण्य की संपन्न प्राकृतिक भौगोलिक विशेषताओं से संबन्धित ऐसे अनेक दंतकथाएं जुड़ी हुई थी। राम, लक्ष्मण और सीता ने दस वर्ष तक इस अनोखे प्राकृतिक वातावरण में कई आश्रमों में निवास किया। दण्डकारण्य वन की सुन्दरता का वर्णन करते हुये वाल्मीकि के कवित्व के चरमोत्कर्ष की एक झलक दिखती है।

वाल्मीकि राक्षस कुल के दो सदस्यों, 'वातापि' और 'इल्वल' का कहानी में उल्लेख करते हैं, जिन्होंने संस्कृत भाषा में निपुणता हासिल कर रखी थी और वह अपने आप को 'ब्रह्मा' के समकक्ष मानते थे। 'वातापि' अपना शरीर छोड़कर राम का भेष बना लेता था और 'इल्वल' ऋषियों को श्राद्ध के लिए आमंत्रित कर उन्हें खाने में 'वातापि' के शरीर का मांस परोस देता था। जैसे ही ऋषि धोखे से 'वातापि' का मांस खाते, वह उनका पेट चीरकर बाहर निकल आता था। यह दोनों राक्षसों की ऋषियों-मुनियों को मारने की एक तकनीकी थी। राक्षस कुल के लोग सीधे मुकाबला करने की वजाय छल और धोखे से मायावी तरीके से हमला करने में ज्यादा विश्वास रखते थे। ऋषि अगस्त्य को राक्षसों से निपटना और उन्हें सबक सिखाना आता था। ऋषि अगस्त्य ने वातापि के मांस को चबा लिया और इससे पहले कि वह दुबारा से शरीर का रूप धारण करे उसे पूरी तरह से पचा गये। ऋषि अगस्त्य को समुद्री विज्ञान में महारथ हासिल करने का श्रेय भी दिया जाता है और वह अपनी तपस्या और मंत्रों की शक्ति से प्रकृति की शक्तियाँ और गुण ग्रहण कर लेते थे।

आज के समय में दण्डकारण्य उड़ीसा का पश्चिमी सीमावर्ती प्रदेश, छत्तीसगढ़, और पश्चिम में उसके आगे के क्षेत्र को माना जाता है। वह उत्तर से दक्षिण दिशा में झारखण्ड से लेकर उत्तरी तेलंगाना तक फैला हुआ है। उसमें समतल क्षेत्र, पर्वत श्रंखलायें, नदियाँ और पर्णपाती झरने हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र को अभी तक पूरी तरह से नहीं खोजा गया है। अभी भी इस क्षेत्र में कई आदिवासी प्रजातियाँ रहती हैं जो अपने रहन-सहन और परम्पराओं को वास्तविक रूप में कायम रखे हुये हैं।■